आयुर्वेद में आत्यन्तिक वेदना प्रशमन हेतु 'योग' का औषधीय प्रयोग

अमितेश कुमार*, **प्रदीप कुमार मिश्रा***, **डॉ. रमेश चंद्रा***, **प्रोफ़ेसर के० के० पाण्डेय****

सारांश :-

आयुर्वेद एक प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति है, जो सांख्य, न्याय और वैशेषिक जैसे भारतीय दर्शनों पर आधारित है। आयुर्वेद में स्वास्थ्य की व्यापक परिभाषा, रोग के कारण, लक्षण,निदान एवं औषधियों का विवेचन प्राप्त होता है। इसमें न केवल शारीरिक रोगों के लिए औषधियाँ अपितु मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर होने वाले रोगों की औषधियाँ नैतिक, भावनात्मक, निषेधात्मक और जीवन दर्शन एवं व्यवहार के रूप में प्राप्त होती है। आयुर्वेद के अनुषार वेदनाओं का अधिष्ठान शरीर, मन, बुद्धि अर्थात विज्ञान है, तीनों स्तरों पर वेदनाओं के प्रशमन के उपरांत स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।शारीरिक स्तर पर वेदनाओं के प्रशमन के उपरांत मानसिक वेदना का प्रशमन तत्पश्चात विज्ञान अर्थात बुद्धि में वेदनाओं का आत्यंन्तिक प्रशमन होता है। "भारतीय परिवेश में कोई भी मानसशास्त्र योगविज्ञान के अध्ययन के बिना पूरा नहीं हो सकता। योग की मौलिक अवधारणा यद्यपि दार्शनिक एवं आध्यात्मिक है और आत्मा परमात्मा के एकीकरण की प्रक्रिया को योग कहा गया है परन्तु पातञ्जल योगदर्शन के अनुसार योग एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहा गया है। वस्तुतः योग, दर्शन का कम मनोविज्ञान का विषय अधिक है। योग के सन्दर्भ में वर्णित तथ्यों के आत्मसात किये बिना मानस विज्ञान को पूर्ण रूप से समझना कठिन है।"[1] व्यक्ति के मनस् को नियंत्रित उसके विज्ञान/ बुद्धि में निहित संस्कार करते हैं। संस्कारों का वर्तन, परिवर्तन दर्शनों की प्रतिष्ठा से होता है। अतः विज्ञान/ बुद्धि के स्तर पर वेदनाओं का आत्यंन्तिक प्रशमन सम्यक् दर्शन से ही संभव है, जो कि तत्वशाक्षात्कार से उपलब्ध होता है। योग तत्वशाक्षात्कार का व्यवहारिक विज्ञान है। आयुर्वेद में वेदनाओं के आत्यंन्तिक प्रशमन के साधनस्वरूप औषध के रूप में 'योग 'को बताया गया है। प्रस्तुत पत्र में हम आत्यंन्तिक वेदना निवृत्ति के औषध के रूप में योग की संक्षेप में व्याख्या करेंगे।

कुंजी शब्द - आयुर्वेद, आत्यंन्तिक वेदना, योग , सम्यक् दर्शन, मोक्ष।

परिचय:-

आयुर्वेद एक व्यावहारिक दर्शन पर आधारित देह- मानस चिकित्सा विज्ञान है। जिसका आधार सांख्य, न्याय और वैशेषिक जैसे भारतीय दर्शन है।आयुर्वेद में दर्शनों की व्यापकता होने के कारण रोगों के लक्षण, कारण, निदान एवं प्रशमन को लेकर इसकी दृष्टि काफी व्यापक है। किसी भी विज्ञान के जन्म के लिए दर्शन नितांत आवश्यक है, क्योकि इन्ही दर्शनों के आधार पर प्रयोग और परिणाम की पुष्टि होती है। तब जाकर इनमें वैज्ञानिकता और व्यवहारिकता आती है और वह दर्शन सम्यक् दर्शन कहलाता है। वास्तव में सम्यक् दर्शन ही विज्ञान का मूल स्वरूप है।सत्त्व, आत्मा और शरीर के संयोग को ही पुमान् (पुरुष) कहते हैं, वही सत्त्व, आत्मा और शरीरयुक्त चेतन है, वही मिलित रूप से सत्त्व, आत्मा और शरीर इस आयुर्वेद शास्त्र का अधिकरण (चिकित्सा का विषय है। इसी सत्वादि विशिष्ट लोक के लिए इस आयुर्वेद शास्त्र का प्रकाश किया गया

* शोधार्थी, संज्ञाहरण विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी।
** प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष, संज्ञाहरण विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

है।

स पुमांश्चेतनं तच्च तच्चाधिकरणं स्मृतम् । वेदस्यास्य तदर्थ हि वेदोऽयं संप्रकाशितः।।2

आयुर्वेद की व्यापक दृष्टि के फलस्वरूप उसके चिकित्सा का विषय भी बहुत शुक्ष्म और व्यापक है।आज जो अन्य आधुनिक चिकित्सा विज्ञान लगातार प्रयोगो और शोधों के आधार पर जिस संपूर्णतावादी स्वास्थ्य के आयामों की समझ प्राप्त कर पाए हैं, वह मौलिक रूप से आयुर्वेद का अंग रही है। "आयुर्वेद का कर्मपुरुष चतुर्विंशति तत्त्वात्मक सृष्टि है और "शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोग" रूप जीव ही आयुर्वेद का कार्यक्षेत्र है। जीवन की इस मौलिक आयुर्वेदीय अवधारणा में कर्ता के भोगायतन रूप स्थूल शरीर को छोड़कर शेष तीन चौथाई तत्व "इन्द्रियसत्त्वात्म" मानस विज्ञान के विषय हैं। इसके अतिरिक्त शरीर स्वयं इनसे प्रभावित होता रहता है और वह इन मानस भावों का भोगायतन मात्र है।[3]

'वेदना' को लेकर आयुर्वेद की दृष्टि काफी व्यापक है। आयुर्वेद में वेदना के स्वरूप, अधिष्ठान, कारण और प्रशमन की चर्चा में संपूर्णतावादी अवधारणा दृष्टिगोचर होती है। वेदना को लेकर आयुर्वेद की दृष्टि का विस्तार, वेदना की संपूर्ण परिधि के अवलोकन से लेकर उसके पार जाने तक की है। यही कारण है कि आयुर्वेद को मोक्षदायिनी चिकित्सा भी कहा जाता है।

आयुर्वेद में वेदनाओं के स्वरूप को द्विविध / दो प्रकार का बताया गया है। चरक संहिता के अनुसार:-

स्पर्शेन्द्रियसंस्पर्शः स्पर्शो मानस एव च ।
द्विविधः सुखदुःखानां वेदनानां प्रवर्तकः ॥[4]

यहाँ कहा गया है कि सुख और दुःख रूप वेदना का प्रवर्तन का कारण विषयों का इन्द्रियों और मानस् से स्पर्श है। यहाँ सामान्यतः वेदनाओं के सुख एवं दुःख रूपी दो स्वरूपों की चर्चा की गई है।

वेदनाओं के अधिष्ठान यानी उसके अधिकार क्षेत्र के बारे में आयुर्वेद का मत है कि केश,लोम,नख का अग्र भाग, अन्न का मल(विट्), द्रव्य (मूत्र) के गुणों को छोड़कर मन और इन्द्रिय के साथ देह वेदना का अधिष्ठान है।

वेदानानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः ।
केशलोमनखाग्रान्नमलद्रवगुणैर्विना ॥[5]

उपरोक्त श्लोक से वेदनाओं के व्यापक क्षेत्र विस्तार और परिधि की आयुर्वेदिय दृष्टिकोण का पता चलता है।यहाँ पर एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि कभी भी निर्विकार आत्मा में सुख- दुःखादि वेदना विशेष नही होते। जब आत्मा 24 तत्वों से युक्त होती है, तब उस संयोग पुरूष अर्थात् राशिपुरूष में वेदनाकृत विशेषताएं होती है।

नैकः कदाचिद्धुतात्मा लक्षणैरुपलभ्यते । विशेषोऽनुपलभ्यस्य तस्य नैकस्य विद्यते ॥ संयोगपुरुषस्येष्टो विशेषो वेदनाकृतः। वेदना यन्त्र नियता विशेषस्तत्र तत्कृतः ॥[6]

वेदनाओं के कारण क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में आयुर्वेद का दृष्टिकोण है कि बुद्धि, धारणा शक्ति और स्मरण शक्ति का भ्रंश हो जाना अर्थात् उचित रूप से कार्य न करना, काल और कर्म की संप्राप्ति, असात्म अर्थो का बुद्धि, इन्द्रियों के साथ संयोग हो जाना वेदनाओं का कारण है।

धीधृतिस्मृतिविभ्रंशः संप्राप्ति कालकर्मणाम्।असात्म्यार्थागमश्चेतिज्ञातव्या दुःखहेतवः।[7]

बुद्धि, धृति, स्मृति विभ्रंश काल और कर्म की संप्राप्ति, असात्म्येन्द्रियार्थ ये तीनो को दु:ख रूपी वेदना का कारण बताते हुए, एक समयोग को सुखरूपी वेदना का कारण माना है। आयुर्वेद के अनुसार सुख- दु:ख का कारण न इन्द्रिय है न इनके अर्थ , सुख- दु:ख का हेतु क्रमश समयोग, अतियोग,अयोग और मिथ्यायोग चार प्रकार के योगो को माना है ।जिनमें से एक समयोग सुख का कारण है शेष तीन योग दु:ख के कारण है। समयोग को अत्यंत दुर्लभ बताया गया है।

तृष्णा को सुख- दु:ख का हेतु बताया गया है। सुखों- दु:खो में क्रमश: इच्छा और द्वेष रूपी तृष्णा की प्रवृति होती है। फिर वही तृष्णा सुख और दु:ख का कारण बन जाती है।

इच्छाद्वेषात्मिका तृष्णा सुखदु:खात् प्रवर्तते। तृष्णा च सुखदु:खानांकारणं पुनरूच्यते।[8]

वही तृष्णा वेदनाके आश्रयभूत शरीर और मन को ढृढतापूर्वक पकड़ती है।यह तृष्णा रज और तम स्वरूप होती है, इन्ही राजसिक और तामसिक गुणों के प्रभाव से मनुष्य नाना प्रकार के अच्छे या बुरे कर्म करता है। फलतः अपने कर्म के फलों को भोगने के लिए बार-बार जन्म और मरण के चक्र में फसा रहता है, और दु:ख की परंपरा नष्ट नही होती । जब स्पर्श के कारणभूत तृष्णा का आभाव होता है तब तब शरीर मन और इन्द्रियो का संयोग न होगा तब इनके संयोग के आभाव में अर्थो का भी संयोग ना होगा अतः वेदना का ज्ञान भी न होगा।

उपादत्ते हि सा भावान् वेदनाश्रयसंज्ञकान्। स्पृश्यते नानुपादाने नास्पृष्टो वेदना।।[9]

चरक संहिता शारीर स्थान के प्रथम अध्याय में वेदना के संबंध में महर्षि अग्निवेश ने भगवान् आत्रेय से प्रश्न पूछते है कि-

क्व चैता वेदना सर्वा निवृत्ति यान्तशेषत:।[10]

ये सभी प्रकार की वेदनायें संपूर्ण रूप में कहाँ शान्त होती है?

योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्। मोक्षे निर्वृत्तिर्निशेषा: योगो मोक्षप्रवर्तक:।[11]

योग और मोक्ष में सभी वेदनाओं का नाश हो जाता है। योग में आत्यन्तिक वेदनाओं का नाश होता है। योग मोक्ष दिलाने वाला होता है।

आयुर्वेद 'वेदना' के सभी चिकित्सकीय आयामों पर संपूर्णतावादी वैज्ञानिक दृष्टि रखते हुए उनके आत्यन्तिक रूप से प्रशमन की स्थिति 'मोक्ष' की आवस्था को मानता है। और योग को मोक्ष देनेवाला साधन बताया है।

भगवान आत्रेय योग के लक्षण और मोक्ष की परिभाषा बताते हुए कहते है-

आत्मेन्द्रियमनोर्थानां सन्निकर्षात् प्रवर्तते । सुखदु:खमनारम्भादात्मस्थे मनसि स्थिरे ॥ निवर्तते तदुभयं वशित्वं चोपजायते । सशरीरस्य योगज्ञास्तं योगसृषयो विदु: ॥[12]

"योग का लक्षण - आत्मा, इन्द्रिय, मन और अर्थों के सन्निकर्ष से सुख और दु:ख दोनों होते हैं। जब आत्मा में मन स्थिर होता है तो किसी कार्य के न होने से सुख और दु:ख ये दोनों निवृत्त हो जाते हैं तब शरीर के साथ आत्मा वशी हो जाती है। इसे योग को जानने वाले ऋषि लोग योग कहते है।"[12]

मोक्षो रजस्तमोऽभावात् बलवत्कर्मसंक्षयाद् ।
वियोग: सर्वसंयोगैरपुनर्भव उच्यते ॥[13]

"मोक्ष की परिभाषा - मन से जब रज एवं तम का अभाव होता है और बलवान कर्मों का क्षय हो जाता है तब कर्म-संयोग अर्थात् कर्मजन्य बन्धनों से वियोग हो जाता है उसे अपुनर्भव अर्थात् मोक्ष कहते है जिसके हो जाने पर पुनः जन्म नहीं होता ॥ "[13]

योग एक भारतीय व्यवहारिक दर्शन है। मूलतःयोग भारतीय प्राचीन दर्शन 'सांख्य' के सिद्धातों का व्यवहारिक स्वरूप और विज्ञान है।"साँख्य और योग-दर्शन में अत्यन्त ही निकटता का सम्बन्ध है जिसके कारण दोनों दर्शनों को समान तंत्र (allied systems) कहा जाता है। दोनों दर्शनों के अनुसार जीवन का मूल उद्देश्य मोक्षानुभूति प्राप्त करना है। साँख्य की तरह योग भी संसार को तीन प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण मानता है। वे तीन प्रकार के दुःख हैं, आध्यात्मिक दुःख, आधिभौतिक दुःख और आधिदैविक दुःख। मोक्ष का अर्थ इन तीन प्रकार के दुःखों से छुटकारा पाना है। बन्धन का कारण अविवेक है। इसलिये मोक्ष को अपनाने के लिये तत्वज्ञान को आवश्यक माना गया है। वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को जानकर ही मानव मुक्त हो सकता है। साँख्य के मतानुसार मोक्ष की प्राप्ति विवेक ज्ञान से ही सम्भव है। परन्तु योग- दर्शन विवेक-ज्ञान की प्राप्ति के लिये योगाभ्यास को आवश्यक मानता है। इस प्रकार योग दर्शन में सैद्धान्तिक ज्ञान के अतिरिक्त व्यावहारिक पक्ष पर भी जोर दिया गया है। साँख्य और योग दर्शन को समान तंत्र कहे जाने का कारण यह है कि योग और साँख्य दोनों के तत्त्व शास्त्र एक हैं।"[12]

"भारतीय परिवेश में कोई भी मानसशास्त्र योगविज्ञान के अध्ययन के बिना पूरा नहीं हो सकता । योग की मौलिक अवधारणा यद्यपि दार्शनिक एवं आध्यात्मिक है और आत्मा परमात्मा के एकीकरण की प्रक्रिया को योग कहा गया है परन्तु पातञ्जल योगदर्शन के अनुसार योग एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहा गया है। वस्तुतः योग, दर्शन का कम मनोविज्ञान का विषय अधिक है। योग के सन्दर्भ में वर्णित तथ्यों के आत्मसात किये बिना मानस विज्ञान को पूर्ण रूप से समझना कठिन है। वस्तुतः योग आयुर्वेद का ही अंग है। आयुर्वेदीय संहिताओं में योग के मौलिक सिद्धान्त को नैष्ठिकी चिकित्सा में अन्तर्भूत कर लिया गया है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि एक ही आचार्य या आचार्य परम्परा ने मन, वाणी तथा शरीर की शुद्धि हेतु अलग-अलग क्रमशः योगशास्त्र, व्याकरण महाभाष्य तथा आयुर्वेद का सृजन किया, स्थूल रूप से भले सत्य न हो परन्तु इस विचार को तर्क- संगत मानना पड़ता है। "[1]

विमर्श:-

आयुर्वेद की महानता इसकी व्यापक दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टि से प्राप्त संपूर्णतावादी अवधारणा से है। जो की न केवल लौकिक अपितु पारलौकिक आयामों के बोध से भी पूर्ण है। यह मोक्षदायिनी चिकित्सा शास्त्र वेदना के स्वरूप को सुख- दुःखरूपी दोनो ध्रुवों पर निर्देशित करता है। तथा उसके मूल कारणो की सम्यक् व्याख्या करता है। तत्पश्चात वेदनाओं की परिधि का अवलोकन तथा सम्यक् निर्धारण करते हुए उससे पार जाने की भी व्यवस्था प्रदान करता है।

आयुर्वेद ने वेदनाओं को द्विविध सुख और दुःख स्वरूप माना है। योग के अनुसार सुख वेदना भी अंततः दुःख स्वरूप ही है । ताप, परिणाम, और संस्कार गुणों के कारण एवं गुणों की वृत्तियों के अविरोध के कारण विवेकी के लिए जन्म, आयु, भोग रूप सभी फल दुःख स्वरूप ही है।

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्त्यः विरोधाच्च दुःखमें व सर्वं विवेकिनः![14]

पातंजल योगसूत्र में सुख का अनुवर्ती क्लेश राग है ऐसा कहा गया है।

सुखानुशयी रागः।।[15]

तथा दुःख का अनुवर्ती क्लेश द्वेष है।

दुःखानुशयी द्वेष।।[16]

क्लेश मिथ्याज्ञान होते है। जो पाचँ प्रकार के अविद्या, अस्मिता,राग, द्वेष, अभिनिवेश है। लब्धरूप क्लेश गुणों के कार्य को सुदृढ़ करते है, परिणाम को निवर्तित करते है, कारण कार्य के प्रवाह को प्रवर्तित करते है और एक दुसरे की कृपा के अधीन होकर कर्मफल की प्रकिया का निष्पादन करते है।[17]

क्लेशा इति, पञ्च विपर्यया इत्यर्थः। ते स्यन्दमाना गुणाधिकारं द्रढ- यन्ति, परिणाममवस्थापयन्ति, कार्यकारणस्रोत उन्नमयन्ति, परस्परानुग्रह- तन्त्रोभूय कर्मविपाकं चाभिनिर्हरन्तीति ।।[17]

यही बात आयुर्वेद के उपरोक्त श्लोकों में भी वर्णित है कि सुखों और दुःखों से क्रमशः इच्छा और द्वेष स्वरूप तृष्णा प्रवृत होती है।फिर वही तृष्णा सुख और दुःख का कारण बनती है।वही तृष्णा वेदना के आश्रयभूत शरीर और मन को ढृढ़तापूर्वक पकड़ती है।

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।।[18]

प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार (इन चारों अवस्थाओं में रहने वाले 'अस्मिता' इत्यादि चारों) परवर्ती क्लेशों की प्रसवभूमि अविद्या है ।[18]

वेदनाओं के कारणरूपी राग-द्वेष जो कि प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार चार आवस्थाओं में रहते है ,उनकी मूल प्रसवभूमि अविद्या है।सभी क्लेश अविद्या के ही भेद है,अविद्या ही इन सभी में व्याप्त है।अविद्या से जो वस्तु विषयरूप में उपस्थित की जाती है,उसी का क्लेश अनुगमन करते है। मिथ्थयाज्ञान काल में ही ये क्लेश उपलब्ध होते है और अविद्या (अर्थात्) मिथ्थयाज्ञान के क्षीण होने पर(ही) नष्ट हो जाते है।

सर्व एवामी क्लेशा अविद्याभेदाः । कस्मात्? सर्वेष्वविद्येवाभिप्लवते । यदविद्यया वस्त्वाकार्यते तदेवानुशेरते क्लेशा विपर्यासप्रत्ययकाले उपलभ्य- न्ते क्षीयमाणां चाविद्यामनु क्षीयन्त इति ।।[19]

पातंजल योगसूत्र में इन क्लेशो को सर्वप्रथम क्षीण (हल्का) करने के उपाय को क्रियायोग के रूप में कहा है। तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्राणिधान क्रियायोग है!

तपस्वाध्यायेश्वरप्राणिधानानि क्रियायोगः।[20]

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च।[21]

उन क्लेशों की स्थुल वृत्तिया जो क्रियायोग के द्वारा हल्की कर दी जाने पर विवेकख्याति के द्वारा नष्ट की जाने योग्य होती है। जिससे की वह शुक्ष्म हो जाए अर्थात् दग्धबीज सदृश्य हो जाए।

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः।।[22]

वे शुक्ष्म क्लेश चित्त के लय द्वारा निवर्तनीय होते है।कहने का तात्पर्य यह है कि उन शुक्ष्म क्लेश के संस्कारों को प्रतिप्रसव यानि प्रतिलोम- परिणाम द्वारा अपनी कारणावस्था में विलिन करने के साधन द्वारा नाश करना पड़ता है।

ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्मा।।[23]

आयुर्वेद के अनुसार उपरोक्त श्लोक में सभी प्रकार की वेदनाओं का वर्तन की बात कही गई है।सभी प्रकार की वेदनाओं का वर्तन योग और मोक्ष की आवस्था में होता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि स्थुलवृत्तियों का शमन तो सामान्य प्रयास वाले उपाय क्रियायोग से हो जाता है,पर उनकी शुक्ष्म वृत्तियों का उच्छेद महत्तर प्रयास वाले उपायों विवेकख्याति (सम्यक् प्रज्ञान) तथा असम्प्रज्ञात के द्वारा संभव होता है।अतः क्लेशों के हान का क्रम प्रथमत् 'क्रियायोग' द्वारा क्लेशों का तनुकरण तत्पश्चात् 'प्रसंख्यान'(सम्यक् प्रज्ञा) के द्वारा उन क्लेशों का शुक्ष्मीकरण अर्थात् दग्धबीजकरण तब 'असम्प्रज्ञात् समाधि' के द्वारा उन दग्धबीज क्लेशों का चित्त के साथ प्रविलिकरण।

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः।।[24]

क्लेशमूलक कर्माशय ,दृष्टजन्मवेदनीय एवं अदृष्टजन्मवेदनीय होते हैं अर्थात् धर्म और अधर्म (प्रकार के) कर्माशय काम, लोभ, मोह, क्रोधजन्य होते है जो वर्तमान और भविष्य दोनों में वेदनाजन्य होते हैं।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भागाः ॥ [25]

(क्लेश रूपी) मूल के रहने पर जन्म, आयु और भोग रूपी कर्माशय के फल (प्राप्त) होते हैं।

दु:खों / वेदनाओं का कारण क्या है, जो हेय अर्थात् त्याज्य है?

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ [26]

द्रष्टा और दृश्य का संयोग ही हेय- हेतु है। द्रष्टा का अर्थ है बुद्धि का प्रतिसंवेदन करने वाला पुरूष ।दृश्य अर्थात् बुद्धि पर आरूढ़ (शब्दादिविषय रूप)धर्म इनका संयोग ही दु:खों / वेदनाओं का कारण है।

उस दुःख के हट जाने से दुःख की शाश्वतिक निवृत्ति हो सकती है।कैसे? दुःख के हेतु के प्रतिकार से त्याज्य दु:ख का प्रतिकार देखे जाने से। जैसे - पैर के तलुओं का बिंध जाना (दु:ख) , काँटों का चुभ जाना (दुःख हेतु), दु:ख हेतु का प्रतिकार अर्थात् काँटो पर पर का ना रखना। जो इन तीनो को लोक में जानता है वो विषय में प्रतिकार आरम्भ करता हुआ दुःख को नही पाता।क्यो? (भेद्यत्व, भेतृत्व और प्रतिकार) अर्थात् दुःख, दुःख के कारण और प्रतिकार तीनो की जानकारी रखने के सामर्थ्य के कारण।

दृश्य प्रकृति और उसके स्वामी द्रष्टा पुरूष की जानकारी के लिए संयोग होता हैअर्थात् इन दोनों की शक्ति के भोग्यत्व और भोक्तृत्व रूप स्वरूप की उपलब्धि का हेतु संयोग है। फिर उस संयोग का कारण क्या है?

तस्य हेतुरविद्या।।[27]

उस संयोग का कारण है अविद्या अर्थात् अज्ञान।

तदभावात् संयोगाभावो हानं, तद् दृशेः कैवल्यम् ।।[28]

उस (अविद्या) के मिट जाने से संयोग का नाश हो जाना 'हान' है और वही पुरुष का 'कैवल्य' है ।।

तस्यादर्शनस्याभावाद् बुद्धिपुरुषसंयोगाभाव आत्यन्तिको बन्धनोपरम इत्यर्थः । एतद्धानम् । तद् दृशेः कैवल्यं पुरुषस्यामिश्रीभावः पुनरसंयोगो गुणैरित्यर्थः । दुःखकारनिवृत्तौ दुःखोपरमो हानम् । तदा स्वरूपप्रतिष्ठः पुरुष इत्युक्तम् ।। 29

उस अविद्या के नाश से बुद्धि और पुरुष के संयोग का नाश होता है अर्थात् (सांसारिक) बन्धन की सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। यही 'हान' है। वह दृक्- शक्ति (पुरुष) का 'कैवल्य' है अर्थात् पुरुष का (बुद्धि से बिल्कुल) अलगाव है या गुणों के साथ फिर से संयोग न होना है। दुःख के कारण (अर्थात् संयोग) की निवृत्ति हो जाने पर दुःख की निवृत्ति हो जाना हान (अर्थात् मोक्ष) है। उस समय पुरुष अपने रूप में प्रतिष्ठित होता है - यह कहा गया है ॥

आयुर्वेद में कैवल्य की इस स्थिति हेतु भगवान आत्रेय द्वारा यह सूत्र प्रवृत हुआ है ।

तस्मिश्चरमसंन्यासे समूलाः सर्ववेदनाः ।

ससंज्ञाज्ञानविज्ञाना निवृत्ति यान्त्यशेषतः ॥[30]

इस हान (मोक्ष) की प्राप्ति का उपाय क्या है, इस विषय में बताया जा रहा है-

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः॥ [31]

(अबाधित) मिथ्याज्ञान शुन्य विवेकख्याति ही हान अर्थात् मोक्ष का उपाय है।

विवेकख्याति रूपी हानोपाय सिद्ध होता है। किन्तु बिना साधन के सिद्धि नहीं होती, इसलिये (विवेकख्यातिरूपी सिद्धि के साधनों को बताने वाला) यह सूत्र आरम्भ किया जा रहा है-

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥[32]

अब योग के अंगो का अवधारण करते हैं ।

यमनियमाऽऽसनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।[33]

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि - ये आठ (योग के) अङ्ग हैं ॥ आयुर्वेद वेदना के स्वरूप सुख और दुःख को दो प्रकार का बताता है ,योग उस सुख रूपी वेदना को भी उपरोक्त कारणों से दुःख स्वरूप ही मानता है।योग में वेदनाओं को चित्तवृत्तियाँ कहा गया है। योग का लक्षण कहते हुए यह सूत्र प्रवृत हुआ है-

योगश्चित्तवृत्तिनिरोध।[34]

योग चित्तवृत्तियों का निरोध है।चित्त प्रकाशशील, चेष्टाशील एवं स्थैर्यशील होने से त्रिगुणात्मक है। अर्थात् सत्व, रज और तमोगुण वाला है । आत्यंन्तिक रूप से वेदनाओं का स्थान भी (मन,बुद्धि,अहंकार) अर्थात् चित्त में ही होता है , जहाँ से वे शरीर और मन पर प्रभाव ड़ालते है। चित्त में रजोगुण और तमोगुण की प्रबलता के कारण राग - द्वेष रूपी सुख और दुःख के कारण उत्पन्न होते है।

योग अंगो के अनुष्ठानपूर्वक जब सम्प्रज्ञात समाधि होती है तब चित्त की इस एकाग्र भूमि में राजस और तामस वृत्तियों का पूर्ण निरोध हो जाता है।इसमें केवल सात्विक वृत्ति पूर्ण रूप से उदित होती है। फलतः साधक को विषयों का वास्तविक और निर्भ्रान्त ज्ञान होता है।इस लिए इस समाधि को सम्प्रज्ञात समाधि कहते है।

सम्यक् प्रज्ञायतेऽस्मिन्निति सम्प्रज्ञातः समाधिः। सम्यक् प्रज्ञा का उदय होता है। आयुर्वेद में वेदनाओं के कारण 'धीधृतिस्मृतिविभ्रंश' जो प्रज्ञा के ही भेद है ,उनका सामाधान हो जाता है। असात्म्य अर्थो की ओर मन की प्रवृत्तियों का भी निरोध हो जाता है। इस समाधि के सिद्ध हो जाने पर प्रकृति और पुरूष इन दो तत्वों का विविक्त ज्ञान हो जाता है।यही उपरोक्त विवेकख्याति है। तत्वों का पूर्ण ज्ञान होने के कारण इसे तत्वज्ञान या सम्यक् ज्ञान भी कहते है।यह विवेकख्याति निश्चित ही

मोक्षप्रद होती है। इसलिए विवेकख्याति का लाभ करानेवाली इस समाधि को ' मोक्षप्रदता' के कारण सम्प्रज्ञात योग कहा जाता है। इस समाधि में जब क्लेशकर्म के संस्कार क्षीण होते है तब विवेकख्याति और सुदृढ़ हो जाती है। किसी भी प्रकार के मिथ्याज्ञान से बाधित नही होती और निरन्तर सर्वथा विवेकख्याति होती रहती है, तब उसे धर्ममें घसमाधि कहते है।उस स्थिति में योगी जीवित रहते हुए भी मुक्त रहता है। सारे क्लेश तथा संचित एवं क्रियमान कर्मसंस्कार और वासनासंस्कार दग्धबीज हो जाते है। इससे बहुत सारे कालज, कर्मज वेदनाओं के कारणों का भी शमन हो जाता है।इस समाधिजन्य मोक्ष की बात आयुर्वेद के उपरोक्त श्लोक ,मोक्षो रजस्तमो.... ।**च० शा०1/142** में भी कही गई है।

एक और योग है, जो सम्प्रज्ञात् समाधि से भी अधिक उत्कृष्ट है।उसे असम्प्रज्ञात् समाधि कहते है।ऐसी समाधि जिसमें चित्त की सात्विक वृत्ति का भी पूर्ण निरोध हो जाता है, इसमें सात्विक, राजसिक, तामसिक तीनों प्रकार की वृत्तियाँ पूर्णतः निरूद्ध हो जाती है। केवल निरोध संस्कार ही चित्त में अवशिष्ट बचते है। इस समाधि में किसी भी प्रकार का बुद्धिकृत ज्ञान बिल्कुल नही रहता न तो इस ज्ञान के संस्कार ही अवशिष्ट बचते है। इसलिए इसे असम्प्रज्ञात समाधि कहा जाता है।किन्तु इसमें पुरूष तत्व की शाक्षात् उपलब्धि होती है। बुद्धि का माध्यमत्व समाप्त हो जाता है। आत्मा की अपरोक्षानुभूति होती है। यही असम्प्रज्ञात् योग है।

चित्त की इस आवस्था में रहने पर विषयों का आभाव होने के कारण पुरूष किस आवस्था में रहता है, इस विषय में योग का यह सूत्र है-

तदाद्रष्टुस्वरूपेअ्वस्थानम्।।[35]

उस समय द्रष्टा की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है। यही स्व में स्थिति है। वास्तविक अर्थो में यही वेदनाओं से मुक्ति है, यही स्वास्थ्य है।

वैसे तो योग अपने लक्षण 'चित्तवृतिनिरोध' के कारण मनोनिग्रह का हेतु है ,अतः प्रमुख रूप से आयुर्वेद की त्रिविध औषधियों में सत्वावजय की श्रेणी में आता है, परन्तु दैवव्यपाश्रय औषधि में भी उतना ही अनिवार्य रूप से शामिल है। युक्तिव्यपाश्रय औषधि का यह सहयोगी तत्व है।

उपसंहार:-

आयुर्वेद वेदनाओं के कारण ,लक्षण एवं प्रशमन के संदर्भ में व्यापक एवं संपूर्णतावादी अवधारणा रखता है ।आयुर्वेद वेदनाओं के सबसे आत्यंन्तिक स्वरूप जिसका अधिष्ठान विज्ञान अर्थात् बुद्धि है, जिसमें वेदनाओं के कारण स्वरूप दर्शन /संस्कार वर्तमान है ,उनका वर्तन कर वेदनाओं से निःशेष रूप से निवृत्ति की व्याख्या करता है। जिसमें औषधि के रूप में 'योग' को बतलाया गया है। वेदनाओं का कारण स्वरूप भ्रांतिदर्शन अविद्या के कारण उत्पन्न होता है ।अविद्या तत्व ज्ञान से दूर होती है। तत्व ज्ञान सम्यक् दर्शन की उपलब्धि के उपरांत प्राप्त होता है और योग सम्यक दर्शन की उपलब्धि का साधन स्वरूप है। अतः वेदनाओं की आत्यंन्तिक रूप से निवृत्ति में 'योग'औषधि स्वरूप है।

संदर्भ:-

1. आयुर्वेदीय मानस विज्ञान, प्रो० रामहर्ष सिंह, प्र०- चौखम्भा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-1986
2. च०सू०/अ०1/47, चरकसंहिता, सविमर्श- ' विद्योतिनी-हिन्दीव्याख्योपेता व्याख्याकार-पं काशीनाथ पाण्डेय एवं डा० गोरखनाथ चतुर्वेदी प्र०-चौखम्भा भारती अकादमी ,वाराणसी-221001,सं-2009
3. आयुर्वेदीय मानस विज्ञान, प्रो० रामहर्ष सिंह, प्र०- चौखम्भा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-1986

4. च० शा०/ अ०-1/133, चरकसंहिता, सविमर्श- ' विद्योतिनी- हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकार-पं काशीनाथ पाण्डेय एवं डा० गोरखनाथ चतुर्वेदी, प्र०-चौखम्भा भारती अकादमी ,वाराणसी-221001,सं-2009
5. च० शा०/ अ०-1/136, चरकसंहिता, सविमर्श- ' विद्योतिनी- हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकार-पं काशीनाथ पाण्डेय एवं डा० गोरखनाथ चतुर्वेदी, प्र०-चौखम्भा भारती अकादमी ,वाराणसी-221001,सं-2009
6. च० शा०/ अ०-1/84-85, चरकसंहिता, सविमर्श- ' विद्योतिनी- हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकार-पं काशीनाथ पाण्डेय एवं डा० गोरखनाथ चतुर्वेदी, प्र०-चौखम्भा भारती अकादमी ,वाराणसी-221001,सं-2009
7. च० शा०/ अ०-1/17, चरकसंहिता, सविमर्श- ' विद्योतिनी- हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकार-पं काशीनाथ पाण्डेय एवं डा० गोरखनाथ चतुर्वेदी, प्र०-चौखम्भा भारती अकादमी ,वाराणसी-221001,सं-2009
8. च० शा०/ अ०-1/134, चरकसंहिता, सविमर्श- ' विद्योतिनी- हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकार-पं काशीनाथ पाण्डेय एवं डा० गोरखनाथ चतुर्वेदी, प्र०-चौखम्भा भारती अकादमी ,वाराणसी-221001,सं-2009
9. च० शा०/ अ०-1/135, चरकसंहिता, सविमर्श- ' विद्योतिनी- हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकार-पं काशीनाथ पाण्डेय एवं डा० गोरखनाथ चतुर्वेदी, प्र०-चौखम्भा भारती अकादमी ,वाराणसी-221001,सं-2009
10. च० शा०/ अ०-1/13, चरकसंहिता, सविमर्श- ' विद्योतिनी- हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकार-पं काशीनाथ पाण्डेय एवं डा० गोरखनाथ चतुर्वेदी, प्र०-चौखम्भा भारती अकादमी ,वाराणसी-221001,सं-2009
11. च० शा०/ अ०-1/137, चरकसंहिता, सविमर्श- ' विद्योतिनी- हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकार-पं काशीनाथ पाण्डेय एवं डा० गोरखनाथ चतुर्वेदी, 12.च० शा०/ अ०-1/138-139, चरकसंहिता, सविमर्श- ' विद्योतिनी- हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकार-पं काशीनाथ पाण्डेय एवं डा० गोरखनाथ चतुर्वेदी
12. च० शा०/ अ०-1/142, चरकसंहिता, सविमर्श- ' विद्योतिनी- हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकार-पं काशीनाथ पाण्डेय एवं डा० गोरखनाथ चतुर्वेदी, प्र०-चौखम्भा भारती अकादमी ,वाराणसी-221001,सं-2009
13. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/15
14. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/7
15. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/8
16. व्यासभाष्य, पा०यो०सू०/सा० पा०-4, पातंजलयोगदर्शनम्, व्याख्या०- डा० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्भा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2015
17. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/4
18. व्यासभाष्य, पा०यो०सू०/सा० पा०-3, पातंजलयोगदर्शनम्, व्याख्या०- डा० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्भा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2015
19. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/1
20. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/2
21. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/11
22. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/10
23. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/12
24. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/13
25. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/17
26. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/24
27. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/25
28. व्यासभाष्य, पा०यो०सू०/सा० पा०-25, पातंजलयोगदर्शनम्, व्याख्या०- डा० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्भा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2015
29. च० शा०/ अ०-1/142, चरकसंहिता, सविमर्श- ' विद्योतिनी- हिन्दीव्याख्योपेता, व्याख्याकार-पं काशीनाथ पाण्डेय एवं डा० गोरखनाथ चतुर्वेदी
30. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/26
31. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/28
32. पातंजल योगसूत्र, सा० पा०/29
33. पातंजल योगसूत्र, स० पा०/2
34. पातंजल योगसूत्र, स० पा०/3

❐